हिन्दू मुसलमान दो राष्ट्र हैं

...यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये कि जब हम दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि हम अपने देश के किसी भूखण्ड पर अपने से भिन्न राष्ट्रवालों का दावा स्वीकार करते हैं।......

विद्यासागर विद्यालंकार

प्रकाशक :

पुस्तक ससार,
७, कोल्हापुर हाऊस,
सब्जो मण्डी, दिल्ली.

प्रथमावृत्ति	मूल्य
१०००	चार आने

मुद्रक:
अर्जुन प्रेस,
श्रद्धानन्द बाजार,
दिल्ली।

हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं, क्योंकि द।
दोनोंका इतिहास भिन्न है दोनों की महत्वकांक्षाएं पर...
सबसे बढ़कर दोनों की संस्कृतियां परस्पर विरोधी हैं ।

× × ×

भाषा की विभिन्नता खप सकती है, धर्म और जाति की विभिन्नता को उपेक्षा की जा सकती है इतिहास को भुलाया जा सकता है, परन्तु संस्कृति के विरोध को लांघ कर दो राष्ट्र एक नहीं बन सकते। हिन्दू हिन्दू हैं और मुसलमान मुसलमान।

× × ×

सावरकर ने बहुत पहले घोषणा की थी कि हिन्दू और मुसलमान दो पृथक राष्ट्र हैं, परन्तु प्लेट-फार्म के शेर कांग्रेसियों ने उन्हें धिक्कारा और उन्हें मुस्लिम-लीगियों का समर्थक बताया और अन्त में इन बुद्धिमान नेताओं ने पाकिस्तान के रूप में स्वयं उसी सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया ।

× × ×

'हाथ कंगन को आरसी क्या?' हिन्दू मुसलमान दो राष्ट्र हैं इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि कि परम पूजनीय बापू से लेकर मियां जिन्ना तक सब लोगों की स्वीकृति से दोनों राष्ट्रों को अलग अलग कर दिया गया है ।

× × ×

परन्तु हम दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं, इसका यह यह अर्थ हरगिज नहीं है कि हम अपनी पुनीत सुजला सुफला मातृ-भूमि के एक इंच टुकड़े पर भी किसी दूसरे राष्ट्र वालों का दावा स्वीकार करते हैं।

× × ×

हिन्दू-मुसलमान दो राष्ट्र हैं

पाकिस्तान के निर्माण से पूर्व लीग ने यह दावा किया था कि हिन्दू और मुसलमान दो पृथक राष्ट्र हैं और कांग्रेस ने इसका विरोध। इस विवाद को लेकर लीग और कांग्रेस की ओर से निरन्तर अपने अपने पक्ष के समर्थन में बहुत मात्रा में साहित्य भी उपस्थित किया गया। परन्तु अन्त में लीग के सिद्धान्त की विजय हुई और कांग्रेस के ही नेताओं ने उस सिद्धान्त को शाब्दिक रूप से स्वीकार न करते हुए भी क्रियात्मक रूप से स्वीकार कर लिया और पाकिस्तान का निर्माण हो गया। इस सिद्धान्त के पीछे जो कटु सत्य कार्य कर रहे थे उनको उपेक्षा की गई, राष्ट्र-निर्माण के आवश्यक तत्वों को अनावश्यक बता कर एक ओर फेंकने का प्रयत्न किया गया। उसका परिणाम

यह हुआ कि कुछ भ्रान्त सिद्धान्तों के शिकार हो जाने के कारण आने वाले महाविनाश को रोकने की जिस तैयारी की आवश्यकता थी—उसके लिये तैयार होने की अपेक्षा गम्भीरतापूर्वक किये जाने वाले प्रयत्नों के विरुद्ध घोर विध्वंसात्मक प्रचार किया गया और उसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि देश की जनता के बहुत बड़े भाग को दानवी अत्याचारों का शिकार हो जाना पड़ा। ऐसी अवस्था में अब हमें पुनः विचार करने की आवश्यकता है कि जिस सिद्धान्त—"हिन्दू मुसलमान पृथक पृथक राष्ट्र हैं"—को क्रियात्मक रूप से स्वीकार कर लिया गया है उसे अब हम सैद्धान्तिक रूप से भी क्यों न स्वीकार कर लें? क्रियात्मक रूप से उसे स्वीकार करने के बाद अब शाब्दिक रूप से उसका विरोध करने का क्या अर्थ है?

राष्ट्र-निर्माण के लिये आवश्यक तत्व—'संस्कृति'

ऊपर निर्दिष्ट दो राष्ट्र के सिद्धान्त के विरोधियों का कहना है कि राष्ट्र-निर्माण के लिये भौगोलिक, आर्थिक और राजनीतिक कारणों की ही आवश्यकता है और ये लोग राष्ट्र-निर्माण में 'संस्कृति' को कोई महत्व नहीं देते। इस सिद्धान्त का कांग्रेस के प्लेटफार्म से निरन्तर प्रचार किया जाता रहा। इसके विपरीत हमारा यह कहना है उपर्युक्त कारण ही केवलमात्र राष्ट्रीयता के निर्माण में आवश्यक नहीं हैं अपितु राष्ट्रीयता के निर्माण के लिए सर्वप्रथम आवश्यक वस्तु 'संस्कृति' है।

यह एक नग्न सत्य है कि मुस्लिम-संस्कृति हिन्दू-संस्कृति से नितान्त भिन्न है। मुसलमानों ने जिस सभ्यता को पनपाया है वह हिन्दू सभ्यता से नितान्त भिन्न ही नहीं अपितु बहुधा हिन्दू-सभ्यता की विरोधी भी है। साहित्य, कला और वास्तु-कौशल, नाम और उपनाम, जीवन के मूल्यों के सम्बन्ध में धारणाएं व विश्वास, कानून व नैतिक बन्धन, रिवाज व रहन सहन, इतिहास व परम्पराएं, दृष्टिकोण, प्रेरणाएं और आकांक्षाएं सभी परस्पर भिन्न और विरोधी हैं।

यही वस्तुएं संस्कृति को बनाने वाली हैं वे ही दोनों की भिन्न भिन्न हैं। जब दो संस्कृतियां भिन्न हैं तो वे समानान्तर रूप से एक देश में रह नहीं सकती और इसीलिये परस्पर विरोधी संस्कृतियां एक राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकतीं।

इसके विरोध में कनाडा, संयुक्तराज्य अमेरिका, स्विट्जरलैण्ड और दक्षिणी अफ्रीका के उदाहरण देकर यह कहा जाता है कि इन देशों में विभिन्न प्रकार के लोगों ने मिलकर एक राष्ट्र का निर्माण कर लिया है इसी प्रकार इस देश में भी सम्भव है। परन्तु इन उदाहरणों को उपस्थित करते समय इन देशों के निवासियों की सांस्कृतिक एकता को भुला दिया जाता है। जिस वस्तु को हम 'पाश्चात्य-संस्कृति' कहते हैं वह अंग्रेजों और फ्रेन्चों में; इटालियन, जर्मन, अंग्रेज और स्पेनिश में; जर्मन, इटालियन और फ्रेंच में; एवं अंग्रेजों और बोअरों में समान रूप से प्रवाहित हो रही है, उसी 'संस्कृति' के कारण ही उनके एक राष्ट्र का निर्माण सम्भव हो सका। उन लोगों में यदि विभिन्नता थी तो केवल प्रदेश, भाषा और रीतिरिवाजों का अन्तर था जो कि सांस्कृतिक एकता में और राष्ट्र-निर्माण में बाधक नहीं होते। हमारे अपने ही देश में प्रादेशिक, व्यावहारिक एवं भाषा की विभिन्नता के होते हुए भी इस देश के सम्पूर्ण हिन्दुओं में एक ही संस्कृति प्रवाहित हो रही है। वस्तुतः विश्व में हम ऐसा एक भी उदाहरण उपस्थित नहीं कर सकते जहां सांस्कृतिक विभिन्नता हो और एक राष्ट्र का निर्माण हो गया हो।

मुसलमानी शासनकाल में हिन्दुओं का उस शासन के विरुद्ध विद्रोह करने का कारण केवल उन शासकों के अत्याचार ही नहीं थे अपितु सांस्कृतिक और राष्ट्रीय विभिन्नता भी थी। इस सांस्कृतिक विभिन्नता को अकबर की व्यवहार-कुशल नीति भी दूर नहीं कर सकी और अकबर को अपने जीवन में कई बार युद्धों में उलझना पड़ा मुस्लिम शासकों के समय इन दोनों संस्कृतियों ने कभी मिलने का

प्रयत्न नहीं किया, इस सम्बन्ध में राजनीतिक प्रयोजन से किये गये प्रचार के अतिरिक्त इसकी सचाई को सिद्ध करने वाला एक भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है। उस काल में जिन लोगों ने अरबी फारसी का अध्ययन किया वह केवल शासकवर्ग को प्रसन्न करने एवं शासकवर्ग का कृपाभाजन बनने के लिये। शासकवर्ग के जिन लोगों ने इस देश की भाषा में यदि कुछ सर्जन किया तो यहां के सांस्कृतिक प्रेम के कारण नहीं अपितु कौतूहलवश, ऐसे ही जैसे कोई अंग्रेज इस देश में आकर इस देश की भाषा सीखता है। अंग्रेजी शासन में जबकि हिंदुओं और मुसलमानों में राजनीतिक चेतना प्रकट हुई तो उसके साथ ही यह स्पष्ट हो गया कि उन्हें जो भी चेतना प्राप्त हो रही है उसका स्रोत उनकी विभिन्न संस्कृतियां हैं, इसी कारण वह राजनीतिक चेतना परस्पर प्रतिद्वन्द्वी रूप में सामने आकर खड़ी हो गईं। पर प्रतिद्वन्द्वी राजनीतिक चेतनाओं का साहस के साथ मुकाबला करने की बजाय सदा इनसे बचने के प्रयत्न किये गये। यह भी बहुत देर पहले ही स्पष्ट हो गया था कि इन दो विभिन्न संस्कृतियों से पोषित राजनीतिक चेतनाओं की देर या अबेर में अवश्य टक्कर होगी। विशेषतः जब कि एक पक्ष की असहिष्णुता के प्रमाण बार-बार सामने आते थे और उस पक्ष को बाह्यशक्ति द्वारा निरन्तर दूसरे पक्ष के विरुद्ध तैयार किया जा रहा था, पर हम लोग उस ओर से बराबर आंख मीचे रहे। अब भी जब कि दो विभिन्न संस्कृतियों द्वारा दो ही राष्ट्रों का निर्माण हो सकता है—यह तथ्य हमारे सामने मूर्तरूप से आ चुका है हम उसे अपने शब्दों से उड़ा कर स्वप्नलोक में लौट जाना चाहते हैं।

केवलमात्र राजनीति, अर्थ और सीमाओं से राष्ट्र के निर्माण की कल्पना करने वालों को अपनी निष्पक्षता सिद्ध करने के लिए सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण राज्य को विभिन्न संस्कृतियों के पुजारियों के लिए भिन्न-भिन्न व्यवस्थायें करनी पड़ेंगी। परन्तु किसी भी राज्य के लिए निष्पक्ष रह सकना सम्भव नहीं है, क्योंकि राज्यकर्मचारियों में किसी

भी एक संस्कृति के अनुयायियों का तो बाहुल्य होगा ही, ऐसी अवस्था में जिस संस्कृति के लोग वहां अल्पमत में होंगे उनके अन्दर असन्तोष की भावना रहेगी ही और यही भावना आन्तरिक विद्रोह को जन्म देगी एवं पंचमांगी लोगों को जन्म देगी।

यह हो सकता है कि किन्हीं देशों के भूखण्डों में सांस्कृतिक एकता हो और वे पृथक राज्य हों परन्तु इसका विलोम सम्भव नहीं है। सांस्कृतिक-एकता राजनीतिक प्रतिबन्धों को ढीला करने और एक राज्य की स्थापना में सदा सहायक होती है। अरबलोग आज का जीता जागता उदाहरण विद्यमान है। हमारा अपना ही यह देश बहुत बार राजनीतिक दृष्टि से खण्डखण्ड रहा है परन्तु यहां की सांस्कृतिक एकता इसे सदा एक राज्य के रूप में परिवर्त्तित करने के लिए प्रयत्नशील रही है। इतिहास में हमें ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। सांस्कृतिक एकता न होने पर राजनीतिक दृष्टि से एक होने पर भी वे देर तक एक-राज्य के रूप में नहीं रह सकते, यह तो आज हम अपनी आंखों से देख रहे हैं। क्या अब भी दो राष्ट्र के सिद्धांत को स्वीकार करने में आपत्ति की जा सकती है?

जो लोग विदेशी विद्वानों के प्रमाणों को सुनने के अभ्यस्त हैं एवं उन लोगों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त ही जिन लोगों के गले के नीचे उतरते हैं, उनके सन्तोष के लिए यहाँ राज्य और राष्ट्र के स्वरूप पर चिन्तन करनेवाले रेनन और सिजविक के उद्धरण देना उपयुक्त है। रेनन का कथन है: "राष्ट्र की स्थिति तो उसकी दैनिक स्वाकृति का प्रश्न है, उसी प्रकार जैसे व्यक्ति अविरत रूप से प्रतिक्षण अपने जीवित रहने का प्रमाण देता रहता है।" सिजविक का कहना है: "जो राज्य राष्ट्र भी है उसके रूप की आधुनिक कल्पना के लिए जो तत्व वस्तुतः अनिवार्य रूप से आवश्यक है वह यह है कि एक ही सरकार के अधीन होने के जो लाभ हैं उसके अलावा राज के व्यक्तियों में अपनापन, एक ही शरीर के अंग होने की चेतना, विद्यमान हो

जिससे युद्ध या क्रान्ति के कारण उनकी सरकार का अन्त हो जाने पर भी उनमें परस्पर आबद्ध रहने की प्रवृत्ति बनी रहे। इस चेतना के विद्यमान रहने पर ही उनका समुदाय राष्ट्र का रूप ग्रहण कर सकता है फिर चाहे और तत्व भले ही वर्तमान न हों।" क्या आज के हमारे राजनीतिज्ञ मुसलमानों से ईमानदारीपूर्वक यह आशा कर सकते हैं!

सावरकर की दूरदृष्टि

मुसलमानों में पृथक् सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना पैदा करने का श्रेय सर सैयद अहमद और इकबाल को है। सैयद अहमद ने अपने जीवनकाल में एक तो मुसलमानों को अंग्रेजों का कृपाभाजन बनाने का प्रयत्न किया और उन मुसलमानों में पृथक् सांस्कृतिक भावनाएं पैदा करने के लिए अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में प्राचीन मुस्लिम इतिहास की प्रवृत्तियां भरी जाने लगी। इन दोनों ही प्रयत्नों में वे सफल हुए। इकबाल ने इन सांस्कृतिक-भावनाओं को पृथक् राष्ट्र का रूप दिया और उसका धुंधला भौगोलिक मानचित्र भी ला खड़ा किया। यद्यपि हमारे महान् राजनीतिज्ञों ने इसका विरोध करना तो दूर रहा समय समय पर अपने कृत्यों से इसे पुष्ट किया। परन्तु राजनीतिक क्षेत्र से धक्का देकर बाहर निकाले गये 'हिन्दूसभाई' राजनीतिक सन्यासियों का ध्यान इस ओर गया। सावरकर ने इस खतरे से लोगों को सावधान किया और १९३७ में अहमदाबाद में हुए हिन्दू-महासभा के अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए उन्होंने कहा: "जो कटु और नग्न सत्य आज हमारे सामने उपस्थित हैं उन्हें वीरतापूर्वक हमें मान लेना चाहिए। आज का भारत एक और एक जातीय राष्ट्र नहीं है अपितु इसके विपरीत यहां दो मुख्य राष्ट्र हैं एक हिन्दू और एक मुसलमान।" १९३९ में सावरकर ने पुनः कलकत्ता में हिन्दू महासभा के अध्यक्ष-पद से घोषणा की: 'सांस्कृतिक, भाषा विषयक ऐतिहासिक और ऐसे ही अन्य सजीव सम्बन्ध केवल प्रादेशिक सम्बन्ध से कहीं अधिक प्रबल हैं।... हम हिन्दू धर्म, संस्कृति, इतिहास और जातीयता तथा अन्य सम्बन्धों से ऐसे गुथे हुए

हैं जिससे हम निश्चय रूप से अन्य लोगों के सम्मुख एक जाति के रूप में होंगे। यही कारण है कि हम हिन्दू जो काश्मीर से मद्रास तक और सिन्ध से आसाम तक रहते हैं उन सब का स्वतः एक राष्ट्र होगा। दूसरी ओर भारतीय मुसलमान, व्यापक रूप से अपना सम्बन्ध अपने द्वार के सामने रहने वाले हिन्दुओं से रखने की अपेक्षा बाहर के मुसलमानों से रखने के अधिक पक्ष में हैं जिस भांति जर्मनी में यहूदी करते थे।"

वस्तुतः सावरकर ने जिस राजनीतिक दूरदर्शिता का परिचय दिया था उसे धिक्कारा गया और जान-बूझ कर यह प्रचार किया गया कि दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को हिन्दूसभा प्रचारित कर रही है। जिस सत्य को हिन्दूसभा ने समय रहते समझ लिया और सार्वजनिकरूप से जिसकी घोषणा करके जनता को सावधान करने का प्रयत्न किया, उसी सत्य को कुछ आदर्शवादी मानने से इनकार करते रहे परन्तु उसी सत्य को लीग की तलवार ने उन्हीं आदर्शवादियों से क्रियात्मकरूप से मनवा लिया। क्रिया में उसे मान लेने के बाद अब भी वे आदर्शवादी सिद्धान्ततः इसे नहीं मान रहे और देश को एक भयंकर विनाश के पथ पर खींच कर ले जारहे हैं।

परन्तु देश का विभाजन स्वीकार नहीं

यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि जब हम दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि हम इसी कारण से अपने देश के किसी भूखण्ड पर अपने से भिन्न राष्ट्र वालों का दावा स्वीकार करते हैं। यह सम्पूर्ण देश भूतकाल में जिस संस्कृति के अनुयायियों का रहा है भविष्य में भी उन्हीं का रहेगा। यदि इस देश में हमसे विभिन्न संस्कृति के लोग बलात् घुस आये हैं अथवा यहीं के कुछ लोगों ने तलवार के डर से धर्म के साथ संस्कृति भी बदल ली है तो उनका इस देश की भूमि पर आधिपत्य स्वीकार नहीं किया जा सकता। उनके लिए तो सरल मार्ग यह है कि वे या तो इस

देश को स्वेच्छा से छोड़ जायें अथवा इस देश की संस्कृति को अपना कर यहीं घुल मिल जायें जैसे कि भूतकाल में हूणों और शकों ने किया था। यदि कुछ सौ वर्ष पूर्व वे लोग तलवार के डर से अपनी संस्कृति को बदल सकते थे तो आज उनको उस संस्कृति से मुक्त होने से रोकने वाला कोई नहीं है। यदि उन्हें उसी विदेशी संस्कृति का मानने वाला रहने दिया गया तो असन्दिग्ध रूप से हम अपने देश में सैकड़ों पाकिस्तान बनाने की योजनाओं का सूत्रपात कर रहे होंगे। सबसे बड़का दो राष्ट्रों के सिद्धान्त का तर्क ही इसीलिये है कि जिस अखण्ड भारत की कल्पना हम बरसों से कर रहे हैं उसमें हम से विभिन्न राष्ट्र वालों का इस देश पर कोई दावा स्वीकार नहीं किया जा सकता, वैसे ही जैसे कि यहूदियों का जर्मनी पर।

यह केवल तर्क और भावनाओं का विषय नहीं है अपितु देश की सुरक्षा का प्रश्न भी है और वैज्ञानिक सीमा का भी। देश की आज की सीमाएं कृत्रिम, अप्राकृतिक और अवैज्ञानिक हैं। इन सीमाओं के निर्माण से न तो राजनीतिक दलों का सन्तोष हुआ है नही देश की सुरक्षा समस्या हल हुई है। अंग्रेज राजनीतिज्ञ भी अपने शासनकाल की उत्तर-पश्चिमी सीमा से असन्तुष्ट थे क्योंकि वह नितान्त अवैज्ञानिक थी और वह सीमा-समस्या सदा उनको सिर दर्द का विषय बनी हुई थी। इस देश की उत्तर पश्चिम में जो वैज्ञानिक सीमा है वह हिन्दु-कुश है जोकि मौर्य-साम्राज्य की सीमा रहा है। इसका उल्लेख करते हुए विन्सैण्ट स्मिथ ने लिखा है "मौर्य-साम्राज्य द्वारा स्थापित सीमाएं वे वैज्ञानिक सीमाएं थीं जिन के लिये अंग्रेज और भारतीय राजनीतिज्ञ सदा आहें भरते रहे हैं।" ऐसी स्थिति में न तो सांस्कृतिक दृष्टि से, नहीं देश की सुरक्षा की दृष्टि से और नहीं सीमा की दृष्टि से वर्तमान सीमाओं से सन्तुष्ट रहा जा सकता है। इसलिए देश के विभाजन को न तो स्वीकार किया जा सकता है नहीं वह हमें मान्य है।

देश में अन्य-धर्म तथा राष्ट्रीयता

इस देश में धर्मों की विभिन्नता बहुत अधिक मात्रा में है। परन्तु

अधिकांश धर्मावलम्बी हिन्दू-संस्कृति के अनुयायी हैं। यहां इस समय मुस्लिम धर्म के अतिरिक्त अन्य दो धर्म ऐसे हैं जोकि थोड़े थोड़े रूप में पिछले दिनों अपनी पृथक् संस्कृति को जन्म देने का प्रयत्न करते रहे हैं, वे हैं सिख धर्म और ईसाई धर्म। सिखों ने अपने वर्तमान स्वरूप को पृथक् संस्कृति को, जन्म देने का प्रयत्न अंग्रेजी शासन काल में ही किया है। इसका जो धार्मिक रूप है वह तो आज भी पंजाब के हिन्दुओं और सिखों दोनों में एक समान है परन्तु अपने राजनीतिक प्रयोजनों को सिद्ध करने के लिए गत ३०-३५ वर्षों में इसे न केवल पृथक् धर्म के रूप में खड़ा करने का प्रयत्न किया गया अपितु इसकी संस्कृति भी पृथक घोषित की गई। असंदिग्ध रूप से इसमें कुछ ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की प्रेरणा भी थी। परन्तु हम यह नहीं भूल सकते कि अब तक सिख-संस्कृति हिन्दू-संस्कृति का ही अंग थी, अब इसे अवश्य हिन्दू-विरोधी संस्कृति के रूप में पनपाया जा रहा है। भूतकाल में बौद्ध संस्कृति का विकास ऐसे ही हुआ था। बौद्ध संस्कृति का जन्म भी हिन्दू संस्कृति से हुआ था। और प्रारम्भ में वह हिन्दू संस्कृति का ही अंग समझी जाती थी। बुद्ध की मृत्यु के बाद भी कई सौ वर्ष तक यही स्थिति रही। परन्तु इसके बाद कुछ महत्वाकांक्षी लोगों ने इसे हिन्दू संस्कृति के समानान्तर विरोधी रूप में और एक भिन्न संस्कृति के रूप में खड़ा कर दिया। उसका परिणाम यह हुआ कि यहां सैकड़ों वर्षों तक बौद्धों और हिन्दुओं में वैमनस्य चलता रहा विद्रोह होते रहे और जनसंहारक युद्ध होते रहे। अन्त में बौद्ध संस्कृति के पृथकत्व को यहां से विदाई लेनी पड़ी। आज के सिख नेता भी पिछले कुछ दिनों से उसी मार्ग पर चलते रहे हैं। वे सिख संस्कृति को पृथक् रूप से एक विरोधी संस्कृति के रूप में खड़ा करते रहे हैं और सिखों ने अपनी संस्कृति के प्रमुख स्थानों पर आक्रमणात्मक रूप भी धारण किया है। अब इन्हीं सिख नेताओं को यह निर्णय करना है वर्तमान जाग्रत नवीन राष्ट्रीयता

को अपनाने के लिए वे अपने रुख में परिवर्तन करते हैं अथवा बौद्ध संस्कृति के मार्ग को अपनाते हैं ? नवजाग्रत राष्ट्रीयता को ग्रहण करने के लिये यह आवश्यक है कि सांस्कृतिक दृष्टि से अपने को भारतीय संस्कृति में लीन कर दें, धर्म चाहे पृथक् रखें।

प्रारम्भ में ईसाई धर्मावलम्बियों ने जब एक पृथक् संस्कृति को धारण किये हुए यहां प्रवेश किया तो इस देश में उन्होंने तूफान खड़ा कर दिया और यहीं के कुछ लोगों को धर्मपरिवर्त्तन करा के ईसाई बना दिया। परन्तु इन लोगों ने धर्मपरिवर्त्तन करके भी अपनी संस्कृति नहीं बदली, इसी कारण भारतीय ईसाईयों और अन्य लोगों में प्रगट रूप से कोई बड़ा संघर्ष नहीं हुआ। यदि इन लोगों ने अपना रुख इसी प्रकार रखा अतंदिग्ध रूप से कोई संघर्ष का अवसर भी नहीं आयेगा। इसी प्रकार मुसलमानों में भी उदाहरण प्राप्त हैं। राजपूताने के प्रदेशों में बसने वाले बहुत से हिन्दुओं ने बाह्य दबाव के कारण अपना धर्मपरिवर्त्तन कर लिया और मुसलमान हो गये परन्तु उन लोगों ने बहुत देर तक अपनी संस्कृति नहीं बदली। आगरा, अलवर और भरतपुर के मेव इसके उदाहरण हैं। परन्तु सन् २४ से इन मेवों की संस्कृति को बदलने के लिए मौलवियों और मुल्लाओं ने एड़ी चोटी का जोर लगाना शुरू किया, उसका परिणाम यह हुआ कि उन मेवों ने सांस्कृतिक परिवर्तन को स्वीकार कर लिया और उसका परिणाम भी हमारे सामने है। आज वे ही हिन्दू-सन्तति मेव सांस्कृतिक विभिन्नता को अपना कर हिन्दुओं से ही जीवन-मरण के संग्राम में उलझ पड़े हैं।

अब, प्रश्न यह है कि राष्ट्रीयता को निर्धारित करने वाली सांस्कृतिक विभिन्नता के इतना अधिक स्पष्ट होने पर क्या हम दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को स्वीकार न करें ? यदि आज हमने इस विभिन्नता और पृथक् राष्ट्रीयता के सिद्धान्त को स्वीकार न किया तो हम अपने देश को पुनः एक बड़े दुर्भाग्य की ओर धकेल रहे होंगे।

१. तिरंगा-झण्डा.

तीन सुन्दर राष्ट्रीय एकांकी नाटकों का संग्रह। इन एकांकी नाटकों में राष्ट्रीय ध्वज का महत्व और उस के लिये सर्वस्व तक बलिदान कर देने की भावना का कलापूर्ण ढंग से प्रतिपादन किया गया है। पुस्तक नवयुवकों के लिये विशेष रूप से रुचिकर तथा उपयोगी है। सजिल्द, पृष्ठ संख्या ८०, तिरंगा टाइटिल

मूल्य १।)

२. नया आलोक: नई छाया.

कहानी-संग्रह। प्राचीन साहित्य के मार्मिक स्थलों पर नये ढंग से विचार किया गया है। ये कहानियां हिन्दी साहित्य के लिये बिलकुल नई और मौलिक देन हैं। पुस्तक संग्रहणीय है। सजिल्द, पृष्ठ संख्या १३०, तुरंगा टाइटिल मूल्य २)

३. प्रेमदूती.

सुरुचिपूर्ण शृंगार की सरस कविताओं का संग्रह। इस संग्रह में कवि की 'प्रेमदूती' के अतिरिक्त 'करीर-वथा' 'परिणय' 'अग्नि-संस्कार' आदि नौ कविताएं संगृहीत है। कविताएं तन्मय होकर लिखी गई हैं, और पाठक को भी तन्मय कर लेती हैं। पृष्ठ संख्या ६४, आकर्षक टाइटिल साफ और सुन्दर छपाई। मूल्य ।॥)

४. संगीत व्यायाम—ले० प्रो० नारायण राव.

व्यायाम यदि संगीत के साथ की जाय, तो उसमें रस भी आता है और लाभ भी अधिक होता है। सामूहिक व्यायाम, लाठी लेजिम, ड्रिल इत्यादि कैसे संगीत के साथ की जांय, यह सीखने के लिये इससे अच्छी पुस्तक हिन्दी में कोई नहीं है। पुस्तक संस्थाओं के लिये विशेष उपयोगी है। एण्टिक पेपर पर बढ़िया छपाई और दर्जनों चित्र। मूल्य केवल पांच रुपया

प्राप्ति स्थान:

पुस्तक, संसार, ७ कोल्हापुर हाऊस, सब्जीमण्डी, दिल्ली.

सम्राट्
विक्रमादित्य
हिन्दी साहित्य का नवीनतम सुन्दर नाटक

उन दिनों की रोमांचकारी तथा सुखद स्मृतियां, जब कि भारत के समस्त पश्चिमोत्तर प्रदेश पर शकों और हूणों का बर्बर आतंक राज्य छाया हुआ था, देश के नगर-नगर में द्रोही विश्वास घातक भरे हुए थे, जो कि शत्रु के साथ मिलने को प्रतिक्षण उद्यत रहते थे।

अत्याचारियों की अजेय सेनाएं लावा के प्रवाह की भांति अवन्ति की ओर बढ़ रही थी, प्रजा पीड़ित और त्रस्त होकर अपना घरबार छोड़कर अवन्ति की सीमाओं में प्रविष्ट हो रही थी और उसके कष्ट को सुनकर अवन्तिवासी क्रोध और क्षोभ से पागल हो उठते थे।

अन्त में महाकाल की कृपा हुई। स्कन्द के समान पराक्रमी विक्रमादित्य के नेतृत्व में भारतवर्ष की सेनाओं ने केसरिया गरुड़ध्वज लेकर युद्ध प्रारम्भ किया। अत्याचारियों की हार पर हार हुई और अन्त में एक दिन आया कि अवन्ति का गरुड़ध्वज हिन्दूकुश पर लहरा रहा था।

श्री विराज की यह नवीनतम रचना प्रत्येक राष्ट्रप्रेमी को अवश्य पढ़नी चाहिये। मूल्य केवल १॥)

प्राप्ति स्थानः

पुस्तक-संसार, ७ कोल्हापुर हाउस, सब्जीमण्डी, दिल्ली